जैनागम में भारतीय शिक्षा के मूल्य

❑ दुलीचन्द जैन "साहित्यरत्न"

जैनागमों में शिक्षा के श्रेष्ठ सूत्र व्याख्यायित है। शिक्षा मनुष्य के जीवन में उच्च संस्कारों की स्थापना करने में सक्षम होनी चाहिये। सम्यक शिक्षा मनुष्य को न केवल भौतिक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराती है परंतु उसकी आंतरिक शक्ति का भी विकास करती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य के जीवन में विनय, विवेक, चरित्रशीलता व करुणा आदि गुणों का विकास होना चाहिये। जैनागमों के आधार पर भारतीय शिक्षा के मूल्यों की व्याख्या कर रहे हैं जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान, चेन्नई के सचिव श्री दुलीचन्द जैन।

— सम्पादक

पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के दुष्परिणाम-

हमारे देश को स्वतंत्र हुए अर्द्धशताब्दी व्यतीत हो चुकी है और सन् १९९७ में हमने आजादी की स्वर्ण जयन्ती मनाई थी। लेकिन यह हमारा दुर्भाग्य है कि इतने वर्षों के बाद भी हमने भारतीय शिक्षा के जो जीवन-मूल्य हैं उनको हमारी शिक्षा-पद्धति में विनियोजित नहीं किया। हम लोगों ने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को ही अपनाया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि जहाँ एक ओर देश में शिक्षा संस्थाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिनमें करोडों बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, वही जीवन- उत्थान के संस्कार हमारे ऋषियों, तीर्थकरों एवं आचार्यों ने जो प्रदान किये थे, वे आज भी हम हमारे बच्चों को नहीं दे पा रहे हैं। एक विचारक ने ठीक ही कहा है - "वर्तमान भारतीय शिक्षा-प्रणाली न "भारतीय" है और न ही वास्तविक "शिक्षा"। भारतीय परंपरा के अनुसार शिक्षा मात्र सूचनाओं का भंडार नहीं है, शिक्षा चरित्र का निर्माण, जीवन-मूल्यों का निर्माण है। **डॉ. अल्तेकर** ने प्राचीन भारतीय शिक्षा के संदर्भ में लिखा है - "प्राचीन भारत में शिक्षा अन्तर्ज्योति और शक्ति का स्रोत मानी जाती थी, जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के संतुलित विकास से हमारे स्वभाव में परिवर्तन करती और उसे श्रेष्ठ बनाती है। इस प्रकार शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि हम एक विनीत और उपयोगी नागरिक के रूप में रह सकें।[1]" स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक समितियों एवं शिक्षा आयोगों ने भी इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया और इस बात पर जोर दिया कि हमारे राष्ट्र के जो सनातन जीवन मूल्य हैं, वे हमारी शिक्षा पद्धति में लागू होने ही चाहिए। सन् १९६४ से १९६६ तक डॉ. दौलतसिंह कोठारी - जो एक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक थे, की अध्यक्षता में 'कोठारी आयोग' का गठन हुआ। इसने अपने प्रतिवेदन में कहा - "केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों को नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा का प्रबन्ध अपने अधीनस्थ संस्थाओं में करना चाहिये।" सन् १९७५ में एन.सी.ई.आर.टी. ने अपने प्रतिवेदन में कहा - "विद्यालय पाठ्यक्रम की संरचना इस ढंग से की जाए कि चरित्र निर्माण शिक्षा का एक प्रमुख उद्धेश्य बने।"

हमारे स्थायी जीवन मूल्य

हमारे संविधान में "धर्म-निरपेक्षता" को हमारी नीति का एक अंग माना है। "धर्म निरपेक्षता" शब्द भ्रामक है क्योंकि भारतीय परंपरा के अनुसार हम "धर्म" से निरपेक्ष

१. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति - डॉ. अनंत सदाशिव अल्तेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं रह सकते। धर्म निरपेक्षता का अर्थ मात्र इतना ही हो कि राज्य किसी विशेष धर्म का प्रचार नहीं करे, तब तक तो ठीक है, लेकिन इसका अर्थ धर्म से विमुख हो जाना कदापि नहीं है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही तीन धर्मों की धाराएं मुख्य रूप से प्रवहमान है - वैदिक धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म। बाद में सिक्ख धर्म भी प्रारम्भ हुआ। इन चारों धाराओं ने कुछ ऐसे नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य स्थापित किये, जिन्हें सनातन जीवन-मूल्य कह सकते हैं और वे प्रत्येक मानव पर लागू होते हैं। उनका हमारी शिक्षा प्रणाली में विनियोजन होना अत्यावश्यक है।

भौतिक व आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय

प्राचीन आचार्यों ने विद्या का स्वरूप बताते हुए कहा है- "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या वह है जो हमें विमुक्त करती है। विद्या किस चीज से विमुक्त करती है, तो कहा गया कि हममें जो तनाव की स्थिति है, दुःख की स्थिति है, आकुलता और व्याकुलता है, वे सब चाहे शारीरिक स्तर पर हों या मानसिक स्तर पर, उनसे मुक्त करानेवाला साधन विद्या ही है। जैन भावना के अनुसार हम कह सकते हैं कि हमें तृष्णा से, अहंकार से, राग और द्वेष से मुक्ति चाहिए। इसलिए हमारे देश के ऋषियों, मुनियों और आचार्यों ने सहस्रों वर्षों से विद्या के सही संस्कारों का सारे देश में प्रचार- प्रसार किया। ये संस्कार इस देश की संपदा हैं तथा अनमोल धरोहर हैं। प्राचीन काल में विद्या के दो भेद कहे गये - विद्या और अविद्या। अविद्या का अर्थ अज्ञान नहीं है, अविद्या का अर्थ है भौतिक ज्ञान और विद्या का अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान। जिस प्रकार से एक स्कूटर दो पहियों के बिना नहीं चल सकता है, वैसे ही विद्या – आध्यात्मिक ज्ञान और अविद्या-भौतिक ज्ञान दोनों का संयोग नहीं हो तो जीवन की गाड़ी भी नहीं चल सकती है। अतः भौतिक ज्ञान के साथ आध्यात्मिक ज्ञान भी आवश्यक है। भगवान् महावीर के जीवन संदेश पर प्रकाश डालते हुए आचार्य विनोबा भावे (जो सर्वोदय के प्रणेता तथा महान् शिक्षा-शास्त्री थे) ने कहा कि जीवन में शांति प्राप्त करने का एक महान् सूत्र महावीर ने दिया था। वह सूत्र है - "अहिंसा + विज्ञान = मानव जाति का उत्थान तथा अहिंसा - विज्ञान = मानव जाति का विध्वंश।" कहने का अर्थ है कि हमारे यहाँ पर भौतिक ज्ञान की अवहेलना, उपेक्षा नहीं की गई किन्तु उसके साथ आध्यात्मिक ज्ञान को भी अपनाने पर जोर दिया गया।

जैन आचार्यों ने शिक्षा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए अध्यात्म विद्या पर बहुत जोर दिया और उसे महाविद्या की संज्ञा प्रदान की। ऋषिभाषित सूत्र में आया है-

"इमा विज्जा महाविज्जा, सव्वविज्जाण उत्तमा।
जं विज्जं साहित्ताणं, सव्वदुक्खाण मुच्चती।।
जेण बन्धं च मोक्खं च, जीवाणं गतिरागतिं।
आयाभावं च जाणाति, सा विज्जा दुक्खमोयणी।।"[1]

अर्थात् वही विद्या महाविद्या है और सभी विद्याओं में उत्तम है, जिसकी साधना करने से समस्त दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है। जिस विद्या से बंध और मोक्ष का, जीवों की गति और अगति का ज्ञान होता है तथा जिससे आत्मा के शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार होता है, वही विद्या सम्पूर्ण दुःखों को दूर करनेवाली है।

प्राचीन ज्ञान का नवीन प्रस्तुतिकरण

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद ने प्राचीन शिक्षा पद्धति का नवीनीकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि **शिक्षा मात्र उन सूचनाओं का संग्रह नहीं है जो ठूंस-ठूंस कर**

१. इसिभासियाइं सूत्र-१७/१-२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे मस्तिष्क में भर दिये जायें और जो वहां निरंतर जमे हुए रहते हैं, हमें जीवन का निर्माण, मनुष्यता का निर्माण व चरित्र का निर्माण करनेवाले विचारों की आवश्यकता है।[1] उन्होंने आगे पुनः कहा कि हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो चरित्र को ऊँचा उठाती है, जिससे मन की शक्तियां बढ़ती है और जिससे बुद्धि का विकास होता है ताकि व्यक्ति अपने पैरों पर स्वयं खडा हो सके।[2]

जीवन का सर्वांगीण विकास

उपरोक्त विचेचन से यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि भारतीय शिक्षा ने जीवन के भौतिक अंगों की उपेक्षा कर दी, ऐसी बात नहीं है। हमारे यहाँ शास्त्रों में जीवन का समग्र अंग लिया गया है अर्थात् मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा का पूर्ण विकास करना शिक्षा का उद्धेश्य है। चतुर्विध पुरुषार्थ मनुष्य जीवन के सम्पूर्ण विकास की उद्भावना है। इसको स्पष्ट करने के लिए हम एक नदी का उदाहरण लें। अगर नदी के दोनों किनारें, दोनों तटबंध मजबूत होते हैं तो उस नदी का पानी पीने के, सिंचाई के, उद्योग-धंधों आदि के काम आता है, उससे जन-जीवन समृद्ध होता है। लेकिन जब उसके किनारे कमजोर पड़ जाते हैं तो नदी बाढ का रूप धारण कर लेती है और तब वही पानी अनेक गाँवों को जलमग्न कर देता है, अनेक मनुष्य और पशु उसमें बह जाते हैं, भयंकर त्राही-त्राही मच जाती है। इसी प्रकार मनुष्य का जीवन धर्म और मोक्ष के दो किनारों की तरह है, इन दो तटों की मर्यादा में अर्थ और काम का सेवन किया जाये तो मनुष्य का जीवन स्वयं के लिए एवं अन्यों के लिए भी उपयोगी और कल्याणकारी सिद्ध होता है। हमारे यहाँ पर जगत् और जीवन की उपेक्षा नहीं की गई, लेकिन संयममय, मर्यादानुकूल जीवन के व्यवहार पर जोर दिया गया है। हमारे यहाँ पर पारिवारिक जीवन में इसी धर्म भावना को विकसित करने को कहा गया। शास्त्रों में पत्नी को "धर्मपत्नी" कहा गया जो धर्म भावना को बढ़ानेवाली होती है। वह वासना की मूर्ति नहीं है। आगम में पत्नी के बारे में बड़ा सुन्दर वर्णन आता है-

"भारिया धम्मसहाइया, धम्मविइज्जिया।
धम्माणु रागरत्ता, समसुहदुक्ख सहाइया।।"[3]

अर्थात् पत्नी धर्म में सहायता करनेवाली, साथ देनेवाली, अनुरागयुक्त तथा सुख-दुःख को समान रूप में बंटानेवाली होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम दुनियां की सभी सूचनाएँ प्राप्त करें, विज्ञान व भौतिक जगत् का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें, सारी उपलब्धियां प्राप्त करें लेकिन इन सबके साथ धर्म के जीवन - मूल्यों की उपेक्षा नहीं करें। उस स्थिति में विज्ञान भी विनाशक शक्ति न होकर मानव जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

तीन प्रकार के आचार्य

राजप्रश्नीय सूत्र में तीन प्रकार के आचार्यों का उल्लेख मिलता है - कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। कलाचार्य जीवनोपयोगी ललित कलाओं, विज्ञान व सामाजिक ज्ञान जैसे विषयों की शिक्षा देता था। भाषा और लिपि, गणित, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत और नृत्य-इन सबकी शिक्षाएं कलाचार्य प्रदान करता था। जैनागमों में पुरुष की ६४ और स्त्री की ७२ कलाओं का विवरण मिलता है। दूसरी प्रकार की शिक्षा शिल्पाचार्य देते थे जो आजीविका या धन के अर्जन से संबंधित थी। शिल्प, उद्योग व व्यापार से संबंधित सारे कार्यों की शिक्षा

१. स्वामी विवेकानंद संचयन भाग ३ पृष्ठ ३०२
२. स्वामी विवेकानंद संचयन भाग ५ पृष्ठ ३४२
३. उपासकदशांग सूत्र ७/२२/७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देना शिल्पाचार्य का कार्य था। इन दोनों के अतिरिक्त तीसरा शिक्षक धर्माचार्य था जिसका कार्य धर्म की शिक्षा प्रदान करना व चरित्र का विकास करना था। धर्माचार्य शील और सदाचरण का ज्ञान प्रदान करते थे। इन सब प्रकार की शिक्षाओं को प्राप्त करने के कारण ही हमारा श्रावक समाज बहुत सम्पन्न था। सामान्य व्यक्ति उनको सेठ और साहूकार जैसे आदरसूचक सम्बोधन से पुकारता था। भगवान् महावीर ने कहा है-"जे कम्मे सूरा से धम्मे सूरा" अर्थात् जो कर्म में शूर होता है वही धर्म में शूर होता है।

जीवन में शिक्षा का स्थान

शिक्षा का मनुष्य के जीवन में क्या स्थान होना चाहिए, इसके बारे में दशवैकालिक सूत्र में अत्यन्त सुन्दर विवेचन मिलता है। वहाँ कहा गया है-

"नाणमेगग्गचित्तो अ, ठिओ अ ठावयई परं।
सुयाणि अ अहिज्जित्ता, रओ सुअसमाहिए।।"[1]

अर्थात् अध्ययन के द्वारा व्यक्ति को ज्ञान और चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है। वह स्वयं धर्म में स्थित होता है और दूसरों को भी स्थित करता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के श्रुत का अध्ययन कर वह श्रुतसमाधि में अभिरत हो जाता है। अगर शिक्षा मनुष्य के जीवन में विवेक, प्रामाणिकता व अनुशासन का विकास नहीं करे तो वह शिक्षा अधूरी है। मूलाचार में कहा गया कि "विणो सासणे मूलं।" अर्थात् विनय जिनशासन का मूल है। जिस व्यक्ति में विनयशीलता नहीं है वह ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। दशवैकालिक सूत्र में भी विनय का बडा सुन्दर वर्णन है। वहाँ कहा गया कि अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति - ये दो बातें जिसने जान ली है, वही शिक्षा प्राप्त कर सकता है।[2] विद्यार्थी का दूसरा गुण है - अनुशासन - निज पर शासन फिर अनुशासन। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया कि जो व्यक्ति गुरुजनों के आज्ञाकारी हैं, श्रुत धर्म के तत्त्वों को जानते हैं, वे महा कठिन संसार समुद्र को तैर कर कर्मों का क्षय कर उत्तम गति को प्राप्त करते हैं[3]। विद्यार्थी का तीसरा गुण है-दया की भावना। दया, करुणा, अनुकम्पा, जीवन मात्र के प्रति प्रेम, आत्मैक्यता की भावना - ये जैन संस्कृति की मानवता को अनुपम देन हैं। सारे विश्व में कहीं भी जीव दया पर इतना जोर नहीं दिया गया। भगवान् महावीर अहिंसा और करुणा के अवतार थे। उन्होंने कहा है-

"संसार के सभी प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है। सुख अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है। सब लम्बे जीवन की कामना करते हैं। अतः किसी जीव को त्रास नहीं पहुंचाना चाहिये। किसी के प्रति वैर विरोध भाव नहीं रखना चाहिए। सब जीवों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए।"[4]

शिक्षा प्राप्ति के अवरोधक तत्त्व

उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया कि पाँच ऐसे कारण हैं जिनके कारण व्यक्ति सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता। ये पाँच कारण है - अभिमान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य।[5] अभिमान विद्यार्थी का सबसे बडा शत्रु

१. दशवैकालिक सूत्र ९/४/३
२. दशवैकालिक सूत्र ९/२/२२
३. दशवैकालिक सूत्र ९/२/२४
४. आचारांग सूत्र १/२/३/४, उत्तराध्ययन सूत्र २/२० एवं ६/२
५. उत्तराध्ययन सूत्र ११/३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। घमण्डी व्यक्ति ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। क्रोध की भावना भी विद्याध्ययन में बाधक है। प्रमादी व्यक्ति ज्ञानार्जन कर नहीं सकता। अतः भगवान् ने बार-बार अपने प्रधान शिष्य गौत्तम को संबोधित करते हुए कहा - **"समयं गोयम मा पमाये।"** हे गौत्तम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो, अप्रमत्त रहो। प्रमाद पाँच प्रकार का है-मद, विषय (कामभोग), कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ), निद्रा और विकथा (अर्थहीन, रागद्वेषवर्द्धक वार्ता)। ये दुर्गुण आज हमारे समाज में बढ़ रहे हैं जो शिक्षा प्राप्ति में बाधक हैं। विद्यार्थी को सदैव जागरुक रहना चाहिए तथा अपना समय आलस्य, व्यसनों के सेवन, गप-शप आदि में नहीं बिताना चाहिए।

शिक्षाशील कौन?

उत्तराध्ययन सूत्र में एक स्थान पर प्रश्न आता है कि शिक्षाशील विद्यार्थी किसे कहें? जिस व्यक्ति में आठ प्रकार के निम्न लक्षण हैं वह शिक्षा के योग्य कहा गया है। वे लक्षण इस प्रकार है-

१. जो अधिक हँसी - मजाक नहीं करता है।

२. जो अपने मन की वासनाओं पर नियन्त्रण रखता है।

३. जो किसी की गुप्त बात को प्रकट नहीं करता।

४. जो आचारविहीन नहीं है।

५. जो दोषों से कलंकित नहीं है।

६. जो अत्यधिक रस-लोलुप नहीं है।

७. जो बहुत क्रोध नहीं करता है।

८. जो हमेशा सत्य में अनुरक्त रहता है। इस प्रकार की शिक्षा मनुष्य को ऊँचा उठाने की प्रेरणा देती है।

चरित्र को ऊँचा उठाएं

आज सूचना तकनीकी (Information Technology) का द्रुतगामी विकास हुआ है। रेडियो, टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि द्वारा विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान सहजता से उपलब्ध हो रहा है, लेकिन अगर बालक के चरित्र निर्माण पर ध्यान नहीं दिया गया तो ये वैज्ञानिक साधन उसे पतित कर सकते हैं। आज विश्व के सर्वाधिक समृद्ध राष्ट्र अमेरिका का एक विद्यार्थी १८ वर्ष की उम्र तक कम से कम १२००० हत्याएं, बलात्कार आदि के दृश्य टी.वी. आदि पर देख लेता है। उस विद्यार्थी के कोमल मस्तिष्क पर इसका कितना भयंकर प्रभाव पड़ता है? आज यही तकनीकी हमारे देश में भी सुलभ हो गई है। अनेक प्रकार के चैनल व चलचित्र टी.वी. पर प्रदर्शित होते हैं जो २४ घण्टे चलते रहते हैं। उनमें से अनेक हिंसा व अश्लीलता को बढ़ावा देनेवाले, हमारे पारिवारिक जीवन को विखण्डित करनेवाले होते हैं। हमारी सरकार भी अधिक आमदनी के लालच में उन्हें बढावा देती है। इसलिए समाज का यह दायित्व है कि जो व्यक्ति शिक्षण शालाएं चलाते हैं उनके द्वारा विद्यार्थियों को चरित्र-निर्माण के संस्कार दिए जाए। केवल नाम के जैन विद्यालय चलाने से काम नहीं होगा, उन विद्यालयों में जैन संस्कारों का भी ज्ञान देना होगा यथा माता-पिता की भक्ति, गुरु-भक्ति, धर्म भक्ति व राष्ट्र - भक्ति। इसी प्रकार से विद्यार्थियों को मानव मात्र से प्रेम, परोपकार की भावना, जीव रक्षा के संस्कार देने होंगे। उन्हें यह महसूस कराना होगा कि कोई दुःखी व्यक्ति है तो उसको यथाशक्य मदद देना, सामान्य - जन के सुख-दुःख में सम्मिलित होना, किसी के भी प्रति द्वेष नहीं रखना आदि संस्कार जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाते हैं। आज विश्व का बौद्धिक विकास बहुत हुआ पर आध्यात्मिक विकास नहीं हुआ। महाकवि दिनकर ने बडा सुन्दर कहा है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"बुद्धि तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान।
चेतता अब भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा भगवान्?"

मनुष्य की बुद्धि तृष्णा की दासी हो गई है। तृष्णा निरन्तर बढ़ती जा रही है। विज्ञान का भी उपयोग अधिकांशतः विध्वंसक अस्त्रों के सृजन में हो रहा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को सुख और शान्ति कैसे प्राप्त होगे?

भारतीय शिक्षा का आदर्श है - भौतिक ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय। जैन शिक्षा के तीन अभिन्न अंग है - श्रद्धा, भक्ति और कर्म। सम्यक् दर्शन से हम जीवन को श्रद्धामय बनाते हैं, सम्यक् ज्ञान से हम पदार्थों के सही स्वरूप को समझते हैं और सम्यक् चरित्र से हम सुकर्म की ओर प्रेरित होते हैं। इन तीनों का जब हमारे जीवन में विकास होता है तभी हमारे जीवन में पूर्णता आती है। यही जैन शिक्षा का संदेश है, हम अप्रमत्त बने, संयमी बने, जागरुक बने, चारित्र-सम्पन्न बने। तभी हमारे राष्ट्र का तथा विश्व का कल्याण संभव है।

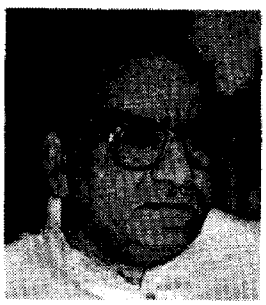

कर्मठ समाजसेवी एवं प्रबुद्ध लेखक श्री दुलीचन्दजी जैन का जन्म १-११-१९३६ को हुआ। आपने बी.कॉम., एल.एल.बी. एवं साहित्यरत्न की परिक्षाएं उत्तीर्ण की। आप विवेकानन्द एजुकेशनल ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं तथा जैन विद्या अनुसंधान प्रतिष्ठान के सचिव हैं। आपने 'जिनवाणी के मोती' 'जिनवाणी के निर्झर' एवं 'Pearls of Jaina Wisdom' आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों की संरचनाएं की हैं। आप कई पुरस्कारों से सम्मानित – अभिनन्दित।

– सम्पादक

किए हुए उपकार को न मानना अकृतज्ञता है। माता-पिता, गुरुदेव, भर्त्ता, पोषक मित्र आदि द्वारा किए गए उपकारों को स्वीकार न कर विपरीत प्रतिकार करना "मेरे लिए क्या किया है, इन्होंने?" मन की यह अभिमान वृत्ति है। यह गुणों की नाशक है।

स्वप्न के समान संसार का स्वरूप है। जिस प्रकार सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न में नाना प्रकार के दृश्य देखता है और स्वयं को भी स्वप्न में राजा आदि के रूपों में देखता है किन्तु जागृत होते ही वे सब दृश्य लुप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार जगत् भी बनता है, बिगड़ता है, एकावस्था में नहीं रहता।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org